ओ३म्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

राष्ट्रीय आर्यनिर्मात्री सभा

ऋषि दयानन्द

तिथि—10 अगस्त 2020
सृष्टि संवत्- १, ९६, ०८, ५३, १२१
युगाब्द-५१२१, अंक-१२९, वर्ष-१३
भाद्रपद विक्रमी २०७७ (अगस्त 2020)

मुख्य संपादक : हनुमत्प्रसाद 'अथर्ववेदाचार्य'
कार्यकारी संपादक : आचार्य सतीश
सम्पर्क सूत्र: 9350945482
Web: www.aryanirmatrisabha.com
E-mail : krinvantovishwaryam@gmail.com

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

(राष्ट्रीय आर्यनिर्मात्री सभा का मासिक विचार पत्र)

यो विश्वस्य जगतः प्राणतस्पतिर्यो ब्रह्मणे प्रथमो गा अविन्दत्। इन्द्रो यो दस्यूँरधराँ अवातिरन्मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ —ऋ० १। ७। १२। ५

व्याख्यान—हे मनुष्यो! [(यो विश्वस्य जगतः)] जो सब जगत् (स्थावर) जड़ अप्राणी का, और (प्राणतः) चेतनावाले जगत् का (पतिः) अधिष्ठाता और पालक है। तथा जो [(प्रथमः)] सब जगत् के प्रथम सदा से है। और (ब्रह्मणे गाः अविन्दत्) जिसने यही नियम किया है कि ब्रह्म अर्थात् विद्वान् के ही लिये पृथिवी का लाभ और उनका राज्य है। और जो (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् परमात्मा [(दस्यून्)] डाकुओं को (अधरान्) नीचे [(अवातिरत्)] गिराता है, तथा उनको मार ही डालता है। (मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे) सो आओ मित्रो भाई लोगो ! अपने सब सम्प्रीति से मिलके 'मरुत्वान्' अर्थात् परमानन्त बलवाले इन्द्र परमात्मा को सखा होने के लिए अत्यन्त प्रार्थना से गद्गद होके पुकारें। वह शीघ्र ही कृपा करके अपने से सखित्व (परममित्रता) करेगा। इसमें कुछ सन्देह नहीं।।४४।।

सम्पादकीय

श्रीराम और रामराज्य

सम्पूर्ण संसार के इतिहास में सर्वश्रेष्ठ मानवीय जीवनमूल्यों की यदि निष्पक्ष खोज की जाय और प्राचीनतम काल से वर्त्तमान काल तक की जाय, तब भी हम सगर्व उद्घोष कर सकते हैं कि- हम ही हैं, जिन्होंने कभी किसी सभ्यता सम्पन्न मानवीय समाज को त्रस्त नहीं किया है। हमारे पूर्वजों एवं वर्त्तमान काल के शासकों तक ने न कभी किसी की भूमि हड़पी, न धन लूटा और न कभी किसी शान्तिपूर्ण सभ्य समाज का ही जीवन जीना दूभर किया है। हाँ, अवश्य ही हमारे आचरण के विपरीत विश्वभर के असंख्य अमानवीय, बर्बर, हिंसक विचारों से ओत-प्रोत सहस्रों लोगों ने हमारे राष्ट्र पर अनेक आक्रमण किए, हमारी भूमि हड़पी, हमारा धन लूटा, हमारी अस्मिता लूटी और हमारे शान्तिप्रिय सभ्य समाज को बार-बार और फिर बार-बार छिन्न-भिन्न ही नहीं किया अपितु कुछ सहस्र वर्ष से जीवन जीने के योग्य भी नहीं छोड़ा, नारकीय यातनाएं देकर वीभत्सता का नग्न नृत्य किया है और आज भी अवसर मिलते ही अपना पैशाचिक कृत्य करने को सदैव तत्पर रहते हैं। किन्तु हमारा यह सनातन धर्ममूलक समाज आक्रमण-अत्याचार से विमुख, सहिष्णुता का पालन करते-करते कुछ अधिक ही सामर्थ्यहीन दशा को प्राप्त हो गया है कि अपनी सभ्यता, संस्कृति, अस्मिता और अपनों की भी समुचित सुरक्षा सहस्रवर्षों के कालखण्ड से नहीं कर पर रहा है। ऊपर से दुर्भाग्य यह कि फिर भी हम अन्धविश्वास पूर्ण धर्म के बाह्याड्म्बरों से तो आनखशिख बंधे हैं, किन्तु तर्कसम्मत (लॉजिकल), सत्यमूलक सार्वकालिक और सार्वभौमिक सिद्धान्तों को आचरण में लाने का तनिक भी धैर्य एवं सामर्थ्य नहीं दिखा पाते हैं। जबकि बहुधा यह भी मानते हैं कि उन्नति की प्राप्ति यदि होनी है तो इन्हीं सत्यसिद्धान्तों से होनी है। किन्तु! पुनरपि धर्म पर अधर्म, आस्था पर अन्धविश्वास, चरित्र पर चित्र, सत्य पर असत्य और यथार्थ पर कल्पनाओं का ही वर्चस्व बढ़ता जाता है। फिर भी हिन्दू कहलाने वाला हमारा ही यह समुदाय इतिहास से कुछ नहीं सीखता एवं उज्वल भविष्य की ओर कभी नहीं देखता है। यही महान आश्चर्य है! यही महा चिन्ता है और यही महाशोक है।

पाठकगणों! बड़ी ही प्रसन्नता का विषय है कि- सम्प्रति, सद्यः ही जिस "श्रीराम जन्मभूमि" के भूमिपूजन से भव्य श्रीराम मन्दिर का शुभारम्भ 5 अगस्त को हुआ है, यह होना ही चाहिए था। आखिर कब तक कोई समुदाय अपने कलंकित इतिहास का उपहास अपने ही राष्ट्र

शेष अगले पृष्ठ पर ....

पिछले पृष्ठ का शेष .... में, अपने ही करोड़ों लोगों के विद्यमान होते हुए, अपने ही द्वारा बनाई गयी सरकारों की छत्रछाया में सह सकता है? नहीं। यह हमारे सनातन धर्मावलम्बी स्वजनों की सहिष्णुता की पराकाष्ठा नहीं, अपितु परस्पर फूट, घिनौनी षड्यन्त्रकारी राजनीति और स्वत्व, स्वाभिमान के प्रति अत्यन्त उदासीनता का परिणाम है। स्वाधीनता के उपरान्त इतने वर्ष लग गए और तब एक अद्वितीय महापुरुष मर्यादा पुरुषोत्तम ''श्रीराम'' के स्मारक की ओर बढ़ पाए। जबकि अभी भी सभ्यता पर असभ्यता के लाखों कलंकित स्मारक हमारी ही मातृभूमि पर हमें मुंह चिढ़ा रहे हैं। कब तक महाराणा की धरती पर अकबर महान और शिवाजी की भूमि पर औरंगजेबी मस्जिद खड़ी रहेगी? अभी कुछ भी निश्चिन्त होकर कहना सम्भव नहीं है। पुनरपि इस समाज को उठना तो होगा ही।

किन्तु वर्त्तमान परिप्रेक्ष्य में हम कुछ लोगों को यह भी विचारना आवश्यक नहीं कि ''श्रीराम के स्मारक मन्दिर'' के पुनर्स्थापना के इस वर्त्तमान काल में जहाँ चित्र के पूजक हमारे ही अपने जन फिर से करोड़ों रूपयों के व्यय से भव्य-दिव्य महाप्रासाद्मय मन्दिर बनाएंगे, दर्शन-प्रदक्षिणा, पूजा-पाठ, भेंट-प्रसाद आदि में निरन्तर निमग्न हो जाएंगे। वहीं हम लोगों को भी कुछ करना चाहिए? प्रश्न है- क्या करना चाहिए? ट्विटर, फेसबुक, वाट्सऐप एवं टेलीग्राम ऐप पर डी.पी. लगानी चाहिए? नमस्ते-अभिवादन छोड़कर परस्पर ''जय सियाराम'' या ''जय श्रीराम'' का उच्च ध्वनि से उद्घोष करना चाहिए? या फिर न्यून से न्यून कुछ तो धन अर्पित कर सहयोग करना चाहिए? या फिर भव्य मन्दिर निर्माण होने के उपरान्त दर्शन-प्रदक्षिण करने का स्वप्न देखते हुए तपस्विनी माता शबरी की भांति दिन पर दिन बिताने चाहिएं? विचार कीजिए। हमार उत्तर है- नहीं। तो फिर ...

हमें करना तो चाहिए किन्तु सरल कार्य नहीं, अपितु उपरोक्त सभी कार्यों से कठिन नहीं, कठिनतम कार्य करना चाहिए और वह कार्य है- 'रामराज्य'। जिस राज्य में कोई सभ्यता का स्मारक न टूटे, किन्तु- असभ्यता का एक भी स्मारक न छूटे। जहाँ के युवक एवं युवतियाँ आस्तिक हों, वेदानुयायी हों, धार्मिक हों, आत्मविद् हों, एक सच्चिदानन्द, निराकार, चेतन सत्ता के उपासक हों, तर्कशील, विवेकशील, पुरुषार्थी, वेद, ऋषि-मुनि, आचार्य एवं विद्वानों के अनुयायी, निर्व्यसनी तथा दृढ़-दुर्धर्ष राष्ट्रभक्त हों। श्रीराम के अनुगन्ता हों अर्थात् छोटे-छोटे मान-अपमान, अपना-पराया, सुख-दु:ख, हानि-लाभ सह सकने में सक्षम-समर्थ हों। राजसिंहासन की घोषणा अपने ही पिता के श्रीमुख से हो जाने के उपरान्त भी, जो विमाता के मुख मिले पिता के वनवास के सन्देश को भी पालने की कुछ तो समर्थ्य रखते हों। तब सम्भव हो पाता है ''रामराज्य''। इस कार्य में उत्साह वर्धक जयकारे कम होते हैं, पुष्पाहार कोई नहीं पहनाता, अपमान, तिरष्कार की बाढ़ आती रहती है, छली-कपटी ठग रावण ऋषि-मुनियों के वेश में मिलते ही हैं, तब भी धैर्य, संयम, धर्म पर अटूट विश्वास को टिकाए रखकर चलते रहना पड़ता है। पुरुषोत्तम श्री राम को चौदह वर्ष लगे थे, इसे बनाने में। हम आपको समय अधिक लगेगा। प्रसिद्धि नहीं मिलेगी। फिर भी बनाना होगा। क्योंकि हम चित्र नहीं, चरित्र के आराधक हैं। हम हिन्दु नहीं हम 'आर्य' हैं और इतना कठिन लक्ष्य 'आर्य' से भिन्न कोई भी नहीं चुन सकता, चुन लिया तो प्राप्त नहीं कर सकता। हम तो चुन चुके हैं, उसी पर चल रह हैं और प्राप्त भी करेंगे- ''रामराज्य''।

वर्ण व्यवस्था: डॉ. अम्बेडकर बनाम वैदिक मत-२

-सोनू आर्य, हरसौला

घर में आए हुए विद्वान अतिथियों व अपने सेवकों (शूद्र) को पहले भोजन कराके उसके पश्चात् शेष भोजन दम्पत्ति करें। -मनु 3/116

मनु की दण्ड व्यवस्था में उच्च पद वाले को अधिक व निम्न पद वाले को अल्प दण्ड का विधान है क्योंकि उच्च पद वाला व्यक्ति अपराध के गुण-दोष का अधिक ज्ञाता होता है।

जिस अपराध के लिए शूद्र को 8 पैसे दण्ड दिया जाए, वही वैश्य को 16 पैसे, क्षत्रिय को 32 पैसे व ब्राह्मण को 64 पैसे अथवा 100 पैसे अथवा 128 पैसे दण्ड दिया जाए क्योंकि वह अपराध का अधिक ज्ञाता है। -मनु 8/337-338

वृद्ध शूद्र को सभी द्विज पहले सम्मान दें। शेष तीनों वर्णों में अधिक गुणी पहले सम्मान का पात्र है- मनु 2/137/

वेदों में शूदों का स्पष्टत: यज्ञादि करने और वेदशास्त्र पढ़ने का अधिकार दिया है-यजुर्वेद 26/2

महाभारत के कुछ उदाहरण भी दृस्टव्य है। बुद्धिमान राजा को चारों वर्णों पर सदा दया करनी चाहिए। -महा शान्ति प. 14/13

तपस्या में सभी का अधिकार है। जितेन्द्रिय और मनोनिग्रह सम्पन्नताविहीन वर्ण के लिए भी तप का विधान है, क्योंकि तप मनुष्यों को स्वर्ग के मार्ग पर लाने वाला है। -महा शान्ति प. 60/48

चाहे कोई नीच वर्ण का पुरुष और स्त्री ही क्यों न हो, यदि उसके मन में धर्म सम्पादन की अभिलाषा है, तो उस योगमार्ग का सेवन करने से उन्हें भी परमगति की प्राप्ति हो सकती है। -महा शान्ति प. 63/120

अपनी पुस्तक **'शूद्र कौन'** पेज 77 पर डॉ. आम्बेडकर भी लिखते हैं कि महाभारत के सभापर्व (अध्याय-33, श्लोक 41-42) के अनुसार पाण्डवों के ज्येष्ठ युधिष्ठिर के राज्यभिषेक में ब्राह्मणों के साथ शूद्रों को भी आमन्त्रित किया गया था।

अब अध्याय और श्लोक संख्या (आम्बेडर जी द्वारा बताई तथा हमारे द्वारा लिखी) ये भिन्नता क्यों है? इसका उत्तर यह है कि डॉ. आम्बेडकर के समय और वर्तमान में भी अनेक प्रकार की भिन्न-भिन्न श्लोक संख्या युक्त महाभारत मिलती हैं। शूद्र कौन में डॉ. आम्बेडकर पेज 79 पर लिखते हैं कि वे यहाँ बता देना अप्रासांगिक न होगा कि महाभारत (अट्ठारह पर्वो सहित) की पान्डुलिपी उपलब्ध नहीं है। पर्वो की अलग-अलग पान्डुलिपिया मिलती हैं और उनमें विरोधाभास है। इसके विपरीत आर्यावर्त्त और दक्षिणपथ के महाभारत भी भिन्न हैं 'शूद्र कौन' पेज 77 पर डॉ. आम्बेडकर लिखते हैं- महाभारत के शन्तिवर्प में भीष्म युधिष्ठिर को राजनीति की शिक्षा देते हुए

शेष अगले पृष्ठ पर ....

पिछले पृष्ठ का शेष ....

कहते हैं- 'बताता हूँ तुम्हें कैसे मन्त्री नियुक्त करने चाहिएं। वेदों के ज्ञाता तेजस्वी व्यवहार कुशल स्नातक चार ब्राह्मण, शास्त्र चलाने में दल बलिष्ठ आठ क्षत्रिय, ऐश्वर्यवान इक्कीस वैश्य, नम्र और चरित्रवान तीन शूद्र, पुराणविद एक सूत तथा आठ अन्य गौरवशाली श्रेष्ठ व्यक्ति तुम्हारे मन्त्री होने चाहिएं।

अन्य जगह महाभारत में- शूद्रयोनौ हि जातस्य सदगुणानु पतिष्ठत:।
वैश्यते लभते ब्रह्मान् क्षत्रियत्वं तथैव च। वन. 112/11

अर्थात्- उत्तम कर्म करने से शूद्रयोनि में उत्पन्न मनुष्य वैश्य, क्षत्रिय व ब्राह्मण हो जाता है, और इसके विपरीत ब्राह्मण हीन कर्मो को करता है तो शूद्र पदवी को प्राप्त हो जाता है। सत्यार्थ प्रकाश पेज 88-89, इसी भांति संस्कारविधि में महर्षि दयानन्द आपस्तम्ब व मनुस्मृति का प्रमाण देते हुए पेज 116 पर लिखते है- 'धर्माचरण से नीच वर्ण उत्तम-उत्तम वर्ण को प्राप्त होता है और उस वर्ण में जो-जो कर्त्तव्य, अधिकार, कर्म हैं, वे सब गुण कर्म उस पुरुष और स्त्री को प्राप्त होवें।'

वैसे ही अधर्माचरण से उत्तम-उत्तम वर्ण नीचे-नीचे के वर्ण को प्राप्त होवें और वे ही उस-उस वर्ण के अधिकार और कर्मों के कर्त्ता होवें ।। 2 ।।

उत्तम गुण कर्म स्वभाव से जो शूद्र है वह वैश्य, क्षत्रिय, ब्राह्मण और वैश्य, क्षत्रिय, ब्राह्मण तथा क्षत्रिय, ब्राह्मण वर्ण के अधिकार और कर्मों को प्राप्त होता है ।। 3 ।।

इसी प्रकार वर्ण व्यवस्था होने से पक्षपात न होकर सहा वर्ण उत्तम बने रहते हैं और उत्तम बनने का प्रयत्न करते हैं और उत्तम वर्ण इस भय से कि मैं नीच वर्ण न हो जाऊँ, इसलिए बुरे कर्म छोड़ उत्तम कर्मों ही को किया करते हैं। इससे संसार की बड़ी उन्नति है।"

अन्यत्र फिर मनुस्मृति में-शूद्रो ब्राह्मणतामेति, ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम् क्षत्रियात् जातमेवंतु विद्याद्वैश्यातथैव च ।। 10/ 65

अर्थात् गुण कर्म योग्यता के आधार पर ब्राह्मण शूद्र बन जाता है और शूद्र ब्राह्मण। इसी प्रकार क्षत्रियों व वैश्यों में भी वर्ण परिवर्तन हो जाता है। इसी प्रकार अन्य अनेक श्लोक मनुस्मृति में हैं जिनमें निर्धारित कर्मत्याग व निकृष्ट कर्मों के कारण द्विज शूद्र हो जाते हैं। (द्रष्टव्य- 2/3, 40, 103, 168, 4/245) और शूद्र श्रेष्ठ कर्माचरण से उच्चवर्ण हो जाते हैं। (9/335)

हालांकि डॉ. आम्बेडकर ने व्याख्या में विरोधाभास माना है और सभवत: यह श्लोक आर्ष मनुस्मृति का ना भी हो, तो भी सातवीं पीढ़ी में ही सही किन्तु डॉ. आम्बेडकर भी वर्ण परिवर्तन की बात तो स्वीकारते ही हैं। अत: स्पष्ठ है कि पौराणिकों से भिन्न आर्ष विचारधारा के साथ डॉ. आम्बेडकर का अधिक विरोधाभास नहीं है। वेद से शुरु होकर महाभारत काल तक कमर्णा वर्ण व्यवस्था निर्विरोध व निर्बाध रूप से प्रचलित रही। न केवल सैद्धान्तिक रूप में अपितु व्यवहारिक रूप से प्रचलित रही। न केवल सैद्धान्तिक रूप में अपितु व्यावहारिक रूप में भी वर्ण परिवर्तन के अनेक उदाहरण मिलते हैं। यथा-दासी पुत्र कवष एलुष, शूद्रा पुत्र 'वत्स', अज्ञातकुलोपन्न सत्यकाम जाबाल, चाण्डाल कुलोत्पन्न मतंग, पराशर, दास, अपराधी के पुत्र एतरेय महिदास, कण्व काले रंग का निषाद (शूद्र), शूद्र कुलोत्पन्न लोमश (लोमहर्षक- जिसको व्यास जी ने पढ़ाया, कहार माता से उत्पन्न व्यास, वैश्य से उत्पन्न वशिष्ठ, जानश्रुति शूद्र जिन्होंने रैक्य मुनि से वेद पढ़ा आदि अनेक ऋषि जो शूद्र कुल में उत्पन्न होकर महर्षि की पदवी तक पहुचे। इसी प्रकार कुछ कथाओं के अनुसार वाल्मीकि, महर्षि बने। बकरी चराने वाला व ब्रह्मा के ब्राह्मण कुल में उत्पन्न मनु क्षत्रिय बना। पुरुमिल, भारद्वाज, देवापि व विश्वामित्र क्षत्रिय कुल में उत्पन्न होकर मन्त्र द्रष्टा ऋषि बने। इसी तरह गृत्समद का पुत्र सुनक था जिसका पुत्र सौनक हुआ, उसके वंश में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र चारों वर्णों के लोग अपने-अपने विभिन्न कर्मानुसार हुए। त्रिशुंक राजा होकर भी धर्मानुसार चाण्डाल बने। स्वयं डॉ. आम्बेडकर के अनुसार महाभारत काल में सुदास नामक शूद्र राजा हुए।

श्रीकृष्ण अति साधारण ग्वाला परिवार से होकर क्षत्रिय बने। इसी भांति श्रीराम क्षत्रिय थे किन्तु दोनों को भगवान माना जाने लगा अर्थात् ऋषियों से भी अधिक सम्मान मिला। ऋषि प्रलस्य के वंशज रावण क्षत्रिय राजा होने के बाद भी कर्मानुसार राक्षस माने गए। राजा रघु का पुत्र प्रवृद्ध शूद्र बना। विश्वामित्र के कई पुत्र शूद्र हुए। महाभारत में महात्मा विदुर दासी पुत्र होकर हस्तिनापुर के मन्त्री बने। इसी तरह बकरी चराने वाला कालिदास रघुवंश काव्य का कर्त्ता होने के कारण महाकवि कहलाया। ब्राह्मण विष्णुगुप्त (चाणक्य) ने शूद्र बालक चन्द्रगुप्त को अपने ज्ञान व तप द्वारा अखण्ड भारत का सम्राट बनाया। अत: स्पष्ट है कि यह व्यवस्था कुछ-कुछ सही रूप मे महाभारत काल के कुछ समय पश्चात तक जारी रही।

यहाँ तक के विश्लेषण से वैदिक मत तथा डॉ. आम्बेडकर की विचारधारा में समानता स्पष्ट होती है। किन्तु वैदिक विचार साम्य के अतिरिक्त अनेक प्रश्न डॉ. आम्बेडकर ने उठाए हैं जिनका विश्लेषण महाभारत काल बाद की व्यवस्था शीर्षक के अन्तर्गत करते हैं।

आओ यज्ञ करें!

अमावस्या	19 अगस्त	दिन-बुधवार	मास-भाद्रपद	ऋतु-शरद	नक्षत्र-मघा
पूर्णिमा	02 सितम्बर	दिन-बुधवार	मास-भाद्रपद	ऋतु-शरद	नक्षत्र-शतभिषा
अमावस्या	17 सितम्बर	दिन-गुरुवार	मास-आश्विन	ऋतु-शरद	नक्षत्र-पू.फाल्गुनी
पूर्णिमा	01 अक्टूबर	दिन-गुरुवार	मास-आश्विन	ऋतु-शरद	नक्षत्र-उत्तराभाद्रपदा

राष्ट्रीय आर्य निर्मात्री सभा द्वारा आयोजित दो दिवसीय सत्रों व सभा से सम्बन्धित नवीन जानकारी सभा की बेवसाईट- www.aryanirmatrisabha.com पर उपलब्ध है। अत: आप वहाँ से जानकारी ले सकते हैं। यह पत्रिका भी प्रत्येक मास दिनांक 10 को सभा की बेवसाईट पर डाल दी जाती है अत: पत्रिका को पढ़ने के लिए साईट के लिंक www.aryanirmatrisabha.com/हिन्दी में पत्रिका पर जाएं।

गृहस्थ सम्बन्ध : भाग-१३

-आचार्य संजीव आर्य, मु०नगर,

'पुन: अपने घर आके पति, सासु, श्वशुर, नणन्द, देवर, देवराणी, ज्येष्ठ जेठाणी आदि कुटुम्ब के मनुष्य वधू की पूजा अर्थात् सत्कार करें। सदा प्रीतिपूर्वक परस्पर वर्तें और मधुर वाणी वस्त्र आभूषण आदि से सदा प्रसन्न और सन्तुष्ट वधू को रक्खें। तथा वधू भी सब को प्रसन्न रक्खे। और वर उस वधू के साथ पत्नीव्रतादि सद्धर्म से वर्तें। तथा पत्नी भी पति के साथ पतिव्रतादि सद्धर्म चाल-चलन से सदा पति की आज्ञा में तत्पर और उत्सुक रहे। तथा वर भी स्त्री की सेवा प्रसन्नता में तत्पर रहे।''

-ऋषि दयानन्द 'संस्कार विधि'

गृहस्थ सम्बन्ध को लेकर अभी तक हमने जितना विवेचन किया है उसमें सांसारिक वर्तमान समस्याओं के साथ-साथ विवाह संस्कार के मन्त्र एवं विधियों को मुख्य लक्ष्य रखा है यद्यपि वेद और वैदिक वाङ्मय गृहस्थ के उपदेश से भरा पड़ा है आगे के लेखों में यथा सम्भव और भी चर्चा करेंगे। विवाह संस्कार के अन्त में ऋषि दयानन्द की यह भावना अपने आर्य गृहस्थों को आदर्श आर्ष परिवार में रहने को प्रेरित करती है। वहीं ऋग्वेद 10-85-46 से उद्धृत मंत्र व ऋषि के शब्दों में उसका भाव दृष्टव्य है- **ओम् सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्वां भव।**

ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधिदेवृषु॥

पदार्थ- हे वराननेतू (**श्वशुरे**) मेरा पिता जो कि तेरा श्वशुर है, उसमें प्रीति करके (**सम्राज्ञी**) सम्यक प्रकाशमान चक्रवर्ती राजा की राणी के समान पक्षपात छोड के प्रवृत्त (भव) हो। (**श्वश्रवाम्**) मेरी माता जो कि तेरी सासू है, उसमे प्रेमयुक्त होके उसी की आज्ञा में (**सम्राज्ञी**) सम्यक् प्रकाशमान (**भव**) रहा कर। (**ननान्दरि**) जो मेरी बहन और तेरी ननंद है, उसमें भी (**सम्राज्ञी**) प्रीतियुक्त, और (देवृषु) मेरे भाई जो तेरे देवर, ज्येष्ठ अथवा कनिष्ठ हैं उनमें भी (**सम्राज्ञी**) प्रीति से प्रकाशमान (**अधिभव**) अधिकार युक्त हो, अर्थात सबसे प्रीति पूर्वक वर्त्ताकर। और- '**अहं भो अभिवादयामि।**' वाक्य के विशेष टिप्पण में ऋषि लिखते हैं- ''इससे उत्तम '**नमस्ते**' यह वेदोक्त वाक्य अभिवादन के लिये नित्यप्रति स्त्री-पुरुष, पिता-पुत्र अथवा गुरु-शिष्य आदि के लिये है। प्रात: सायं अपूर्व समागम में जब-जब मिलें तब-तब इसी वाक्य से परस्पर वन्दन करें।''

उपरोक्त ऋषि भाव व वेदाज्ञा हमारे समक्ष जहाँ दयानन्द के हृदय पटल पर ईश्वर के संविधान की छाया में अंकित आदेशों और उपदेशों को प्रकट करती है वहीं ऋषिवर के हृदय में अपने गृहस्थों के सुख की इच्छा व भावी पीढी के निर्माण के प्रति सजगता के भी दर्शन होते हैं। इस बात को कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति नकार नहीं सकता कि प्राय: समपूर्ण सामाजिक व्यवस्था का आधार गृहस्थ है। यदि गृहस्थ सुखी तो समाज सुखी और यदि यह इकाई दुखी है तो सभी सनातन पथ के पथिक भी दुखी होंगे ही। इन्हीं और इस प्रकार की अनेंको समस्याओं/दु:खों को दूर रखा जा सके इसके लिए ऋषियों ने बहुत विस्तृत उपदेश दिये हैं। उन्हीं मे से कुछ की चर्चा हम आपके समक्ष कर रहे हैं। ऋषिगण ने यह व्यवस्था इसलिए बनायी क्योंकि यदि गृहस्थाश्रम की व्यवस्था उचित है, सम्यक है तो वानप्रस्थ के ठीक होने की सम्भावना बनेगी, अनेकों भावनाशील वानप्रस्थियों मे से ही कुछ योग्य संन्यासी बनेंगे और जिस राष्ट्र व समुदाय के पास योग्य संन्यासी हों उसकी उन्नति अवश्यंभावी है। साथ ही यदि गृहस्थ सुख, समृद्धि और शान्ति से युक्त हैं तो सन्तानों को योग्य बनाकर वे राष्ट्र को उत्तम नागरिक देंगे ही। इस सारे सुख-समृद्धि का आधार पति-पत्नि की योग्यता, समझ, तालमेल और समर्पण ही है इसलिए समय-समय पर उपदेश की व्यवस्था की गयी है। परन्तु इस नवीन जीवन के आरम्भ में उपदेश व दिशा निर्देशों की आवश्यकता अधिक है। इसलिए ऋषिदयानन्द ने भी विवाह संस्कार के पश्चात् गृहाश्रम के लिए विशेष दिशा-निर्देश दिया है। उसमे गृहाश्रम के उद्देश्यों को स्पष्ट करते हुए ऋषि लिखते हैं- ''जो ऐहिक और पारलौकिक सुख प्राप्ति के लिए विवाह करके अपने सामर्थ्य के अनुसार परोपकार करना और नियत काल में यथाविधि ईश्वरोपासना और गृह कृत्य करना। और सत्य धर्म में ही अपना तन, मन, धन लगाना, तथा धर्मानुसार सन्तानों की उत्पत्ति करनी।''

हम यह पहले ही लिख चुके हैं कि गृहस्थ ज्येष्ठ है उसके सम्बन्ध में सामान्य कारण भी वहाँ लिख दिया था। यहाँ गृहस्थ के महान उद्देश्य जो ऋषिवर ने हमारे समक्ष रखे हैं उन्हें देखकर गृहस्थ की महानता और गहरे अनुभव होती है **ऐहिक और पारलौकिक सुख की प्राप्ति** लोक में लोग कहते सुने जाते हैं कि हम तो गृहस्थ हैं हमे इतना अवकाश कहाँ कि हम संसार से इतर कुछ सोच सकें; परन्तु ऋषियों की व्यवस्था का गृहस्थ पारलौकिक आनन्द की प्राप्ति में बाधक नहीं अपितु साधक है।

यदि इन दोनों प्रकार के सुखों को साधना है तो इन प्रमाणों के अनुसार ही जीवन जीना होगा।

सोमो वधूयुरभवदश्विनास्तामुभा वरा। सूर्यां यत्पत्ये शंसन्तीं मनसा सविताददात् ॥

पदार्थ:- (**सोम:**) सुकुमार शुभगुणयुक्त, (**वधूयु:**) वधू की कामना करने हारा पति, तथा वधू पति की कामना करने हारी, (**अश्विना**) दोनों ब्रह्मचर्य से विद्या को प्राप्त, (**अभवत्**) होवें। और, (**उभा**) दोनों, (**वरा**) श्रेष्ठ तुल्य गुण कर्म स्वभाव वाले, (**आस्ताम्**) होवें। ऐसी जो, (**सूर्याम्**) सूर्य की किरणवत सौन्दर्य गुणयुक्त, (**पत्ये**) पति के लिये, (**मनसा**) मन से, (**शंसन्तीम्**) गुणवीर्तन करने वाली वधू है उसको पुरुष और इसी प्रकार के पुरुष को स्त्री, (**सविता**) सकलजगत का उत्पादक परमात्मा, (**ददात्**) देता है, अर्थात् बड़े भाग्य से दोनों स्त्री पुरुषों का जो कि तुल्य गुण कर्म स्वभाव हों, जोड़ा मिलता है। इस पर विचार बिन्दु बनायें व विचारें-

1. कामना करने हारे। 2. ब्रह्मचर्य से विद्या को प्राप्त। 3. श्रेष्ठ, तुल्य गुण, कर्म व स्वाभाव वाले। 4. मन से गुण कीर्तन करने वाले। 5. बड़े भाग्य से जोड़ा बनता है।

विवाह जैसे बड़े काम भी क्या बिना कामना के हो जाते होंगे? सामान्यता युवक-युवति, वधू-वर की कामना करते ही हैं। अत: प्राय: विवाह कामना से ही होता है। केवल बाल विवाह या बेमेल विवाह में ही ऐसा सम्भव है जब विवाह बिना कामना के हो जाता हो और वह बड़ा हानिप्रद व विनाशकारी ही होता है। विद्या तो छात्र-छात्रायें जैसी उन्हें उपलब्ध है; पढ़ते ही हैं। बड़ा संकट है ब्रह्मचार्य का? यह 'ब्रह्मचर्य' शब्द ही आज के युवक-युवतियों को त्रास देने के लिए पर्याप्त है और ब्रह्मचर्य के अभाव में विद्या की गुणवत्ता न्यून ही रहती है जबकि विद्या शेष जीवन का साधन है अत: जिसका साधन ही उत्तम गुणवत्ता का ना हो; उसकी साधना उच्चकोटी की नहीं हो सकती। अत: इसे आधुनिक जीवन में व्यवस्थित स्थान देने की आवश्यकता है उनके उत्तम गुण कर्म स्वभाव एक दूसरे से मिलते हों क्योंकि गुण मिलने पर द्विगुणित हो जावेंगे, यदि दुर्गुण मिले तो वे भी द्विगुणित होंगे। यह बड़ा महत्वपूर्ण है कि वधू-वर दोनों को परस्पर के गुण दीखते हों, वे प्रत्यक्ष भले ही कहें न कहें किन्तु मन से एक दूसरे के गुणों के प्रसंशक अवश्य हों, क्योंकि गुणों में ही प्रीति होती है, जो विवाहित पति-पत्नि सुख चाहते हों वे परस्पर के गुण अवश्य देखा/जाना करें। जिनका जोड़ा इस प्रकार मिल जावे वे दोनों बड़े भाग्यशाली हैं और जिनका न मिले वे भी ऋषियों की भावनाओं को जानकर व ऋषियों के निर्देशों का पालन करके अपने जीवन को उत्तम बना सुख प्राप्त कर सकते हैं।

क्रमश ....

सहज सरल सांख्य-३

-आचार्य सतीश, दिल्ली

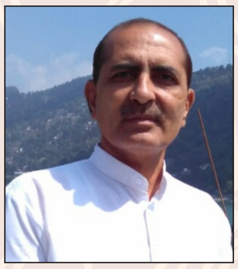

सर्गारम्भ में परमात्मा की प्रेरणा से साम्यावस्था में क्षोभ उत्पन्न होता है। जब प्रकृति की साम्यावस्था नहीं रहती पर महत् तत्व की उत्पत्ति नहीं होती, ऐसी स्थिति को अनेक शास्त्रों में तथा विद्वानों ने विभिन्न नाम दिए हैं जैसे प्रतिभा, विद्युत्, आपस् तथा मनस्। लेकिन साम्यावस्था का आद्य कार्य महत् ही है।

उसके अनन्तर जो कार्य है वह अहंकार है, जो अभिमान वृत्ति वाला है। जहाँ महत् निश्चय या अध्यवसाय वृत्तिक है, अहंकार अभिमान वृत्तिक है।

अब अहंकार में चूंकि मूल प्रकृत्ति ही होती है अत: तमस् अहंकार से पाँच तन्मात्र तथा सात्विक अहंकार से आन्तर (मन) तथा बाह्य (पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ) उत्पन्न होती हैं।

अब यदि दूसरे छोर से विचारें तो जैसे स्थूल लय होते समय अपने सूक्ष्म अणुरूप में लीन होते देखे जाते हैं, इसी प्रकार तन्मात्र और समस्त इन्द्रियाँ अपने मूलकारण अहंकार, अहंकार महत् में और महत् मूल प्रकृति में लीन होकर उसकी मूलकारणता को सिद्ध करता है।

प्रश्नकर्त्ता कहता है कि जब चेतन आत्मा और अचेतन प्रकृति दोनों अनादि हैं तो चेतन आत्मा को मूल कारण क्यों न मान लिया जाए?

चूंकि चेतन तत्व अपरिणामी होने से जगत की उपादानता में उपयोगी नहीं है तो उसको उपादानकारणता में नहीं माना जा सकता है और प्रकृत्ति ही मूल उपादान कारण बचती है।

तो फिर प्रश्न उठता है कि दृश्यमान जगत का मूल कारण तन्मात्र को ही क्यों न मान लिया जाए? क्योंकि वे सूक्ष्म हैं।

जो स्वयं ही अविनाशी, सावयव संघात, अनित्य तत्व है वह कैसे मूल हो सकता है। अत: नित्य सत्व आदि में ही जगत की मूल कारणता सम्भव है, अन्यत्र तन्मात्र आदि में नहीं और श्रुति भी यही कहती है कि अचेतन प्रकृत्ति ही समस्त जगत की उत्पत्ति का मूल है।

यदि प्रकृत्ति के स्थान पर जगत का उत्पादान बिना कारण के आकस्मिक मान लिया जाए तो क्या हानि है?

प्रत्येक वस्तु की उत्पत्ति वस्तु से ही हो सकती है। कार्य मात्र का उपादान वस्तुभूत होना चाहिए क्योंकि वस्तु की सिद्धि अवस्तु से नहीं हो सकती। स्वपन आदि में भी समस्त जागृत ही कुछ अस्त-व्यस्त होकर प्रतिभासित हो उठता है। अत: जो वस्तु कार्यरूप में परिणत होती है, वह वस्तु से ही वस्तु रूप में आती है अवस्तु से नहीं।

जब कार्यरूप में जगत नहीं रहता तो वह अपने कारण रूप में अवस्थित रहता है। तत्व ज्ञान का स्वरूप यही है कि चेतन को चेतन और अचेतन को अचेतन समझा जाए। इससे जगत के अस्तित्व को समझने में प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता। क्रान्तदर्शी ऋषि भी जगत के अस्तित्व का इस रूप में वर्णन करते हैं जैसे यह त्रिगुणात्मक जगत् दिखता है वैसे ही इसका मूल उपादान कारण भी त्रिगुणात्मक है।

और यदि मूल कारण का अभाव मान लिया जाए तो कार्य का अस्तित्व नहीं हो सकता। लेकिन प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से हम जगत् रूप कार्य के अस्तित्व का अनुभव करते हैं अत: मूल कारण का भी अस्तित्व है।

चलो प्रकृति जगत का मूल उपादान और चेतन अधिष्ठाता की प्रेरणा रूप क्रिया से वह कार्य रूप में परिणत होती है तो फिर क्रिया को ही जगत का उपादान क्यों न मान लिया जाए?

क्रिया भी किसी न किसी वस्तु पर की जाती है, केवल क्रिया उपादान नहीं हो सकती चाहे वह परमात्मा की प्रेरणारूप क्रिया ही क्यों न हो।

भोग और अपवर्ग के लिए भी प्रकृति का सहज उपयोग है। भोग का सम्पादन तो साक्षात् प्रकृति करती ही है, अपवर्ग के लिए भी प्रकृति-पुरुष विवेक का होना आवश्यक है।

प्रश्न उठता है कि भोग के लिए तो प्रकृति का उपयोग ठीक है लेकिन अपवर्ग के लिए तो यज्ञयागादि श्रेष्ठ कर्मों का अनुष्ठान ही आवश्यक है, प्रकृति पुरूष विवेक द्वारा प्रकृत्ति का उपयोग आवश्यक नहीं है।

यज्ञयागादि अनुष्ठान किसी विशेष कामना की भावना से किये जाते हैं, ये उस कामना की पूर्ति के लिए भोग सामग्री प्रस्तुत करने में सहायक हैं। यदि निष्काम भाव से किए जाते हैं तब भी भोग साधनों की प्रस्तुति तो करते ही हैं। हाँ, अन्त:करण की शुद्धि में सहायक होते हैं जो प्रकृति-पुरुष विवेक ज्ञान में अत्यन्त उपयोगी हैं। अपवर्ग की प्राप्ति तो प्रकृति पुरुष के विवेक साक्षात्कार के होने पर सम्भव है। ऐसा ही श्रुति भी कहती है कि विवेकज्ञान का साक्षात्कार होने पर ही मोक्ष प्राप्ति सम्भव है।

तो कामना की भावना से जो यज्ञयाग आदि का अनुष्ठान है उसका फल कैसा होता है?

कामना दु:ख का मूल है। कामनामूलक यज्ञयाग आदि जहाँ थोड़े अनुकूल भोग का साघन बनते हैं वहाँ दु:ख के उत्पादक भी होते हैं, अत: वे अविवेक के हटाने में सर्वथा असमर्थ हैं।

तो फिर निष्काम कर्म तो अपवर्ग की प्रप्ति कराने में समर्थ होंगे?

सांसारिक भोगों को प्रस्तुत करने में काम्य और अकाम्य दोनों प्रकार के कर्म समानता रखते हैं। निष्काम कर्म ऐहिक भोग का साघन होकर भी अन्त: करण की शुद्धि का प्रयोजक तो हैं, सहायक हैं, लेकिन अपवर्ग में समर्थ नहीं हैं।

दोनों प्रकार के कर्मों के फल नश्वर हैं तो फिर विवेक ज्ञान से होने वाले अपवर्ग रूप फल को उन्हीं के समान क्यों न माना जाए?

जब समाधि भावना से आत्मा अपने चेतन स्वरूप का साक्षात्कार करता है तो अविवेक की भावना नष्ट हो जाती है तो उसमें होने वाला प्रकृति का भोगजनक सम्पर्क भी आत्मा के साथ नहीं रहता और इसमें किसी अपूर्व भोगरूप फल की प्रप्ति नहीं होती, इसलिए अपवर्ग को कर्मफलों के समान नहीं कहा जा सकता। अत: कर्मफल प्रकृति से जुड़ा है और अपवर्ग उससे रहित है।

अब प्रमाणों के माध्यम से समझने का प्रयास करते हैं।

जिस अर्थ को हमने अभी तक नहीं जाना, उसका निश्चयात्मक ज्ञान प्रमा कहलाता है। यह आत्मा तथा बुद्धि दोनों को या मात्र आत्मा को हो सकता है। इस प्रमा का जो उत्कृष्ट साघन है वह प्रमाण कहलाता है जो तीन प्रकार का है प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द। प्रत्येक प्रमाण में इन्द्रिय, लिंगमात्र या शब्द द्वारा बाह्य विषय बुद्धि में उपस्थित होता है। विषयाकार बुद्धि आत्मा के लिए प्रस्तुत करती है फिर आत्मा को उस विषय की प्रतीति होती है जिसे बोध या प्रमा कहा जाता है जो प्रमाण का फल है। त्रिविध प्रमाणों से ही समस्त अर्थ सिद्ध हो जाते हैं। अत: तीन प्रमाणों से अधिक की आवश्यकता नहीं, ऐसा सांख्यकार का मानना है।

अब प्रत्यक्ष प्रमाण-जब चक्षु आदि इन्द्रियों के द्वारा बुद्धि बाह्य विषय के साथ अपना सम्पर्क करती है और तत्काल विषयाकार हो उठती है, बुद्धि की इस स्थिति को ही बुद्धिवृत्ति कहा जाता है, उसे वह पुरुष को अर्पण करती है। अब यह बुद्धिवृत्ति ही प्रत्यक्ष प्रमाण और चेतन को जो बोध होता है वह प्रमा अर्थात् प्रमाण का फल है। अत: चेतन का सर्वोत्कृष्ट साधन यही बुद्धिवृत्ति अर्थात् प्रत्यक्ष प्रमाण है। इसी से आत्मा को सुख दु:ख का अनुभव होता है। यद्यपि सुख दु:ख आदि विकारों का आधार प्रकृति है लेकिन इसकी अनुभूति चेतन को ही होती है।

क्रमश ....

यज्ञ

-आचार्य संजीव आर्य, मु०नगर,

यज्ञ सनातन संस्कृति में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह महत्व इतना है कि ब्राह्मणकार घोषणा करते हैं- 'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म' अर्थात् यज्ञ श्रेष्ठतम कर्म है। वा सर्व श्रेष्ठ कर्म ही यज्ञ हैं। सभी उत्तम, सर्वोत्तम कर्मों को यज्ञ मानने एवं वैसा ही सम्मान देने के कारण हमारी संस्कृति यज्ञीय कहलाती है। इस शब्द में इतना कुछ छिपा है कि यह संक्षेप में सनातन संस्कृति को कहना हो तो मात्र **'यज्ञ'** कह देने से काम चल जाता है। यज्ञ शब्द के तीन अर्थ प्रसिद्ध हैं- देवपूजा, दान और संगतिकरण। देव जड हैं और चेतन हैं, क्योंकि समस्त जड पदार्थों में दिव्य गुण हैं इसलिए वे सब देव हैं। चेतन देवों के दिव्य गुण भी सत्यार्थ प्रकाश में गिनाये गये हैं। दिवु धातु जिससे देव शब्द बना है उसके अर्थ इस प्रकार कहे गये हैं-

दिवु क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु ।

अर्थात्:- क्रीडा, विजिगीषा (जीतने की इच्छा), व्यवहार (सभी चेष्टायें), द्युति (प्रकाशक), स्तुति (प्रशंसा के योग्य), मोद (आनन्द), मद (अहंकार), स्वप्न (रात्रि विचार), कान्ति (आकषर्ण), गति (ज्ञान) ये सब दिव्य गुण सात्विकता के साथ जिस जड अथवा चेतन में हों उन्हें देव कहा जाता है। इन देवों का यथा योग्य सत्कार करना देवपूजा है। (उपरोक्त गुणों में से कई के सम्बन्ध में भ्रान्ति होना सम्भव है, उसके लिए सत्यार्थ प्रकाश प्रथम समुल्लास देखें।)

दूसरा है 'दान' यह सामाजिक और आध्यात्मिक कार्यों का तो आधार है ही कई बार राष्ट्रीय व राजनैतिक कार्य भी इसकी अपेक्षा करते हैं। इस दान की महत्ता व आवश्यकता को देखते हुवे द्विजमात्र के कर्तव्य रूप में कहा गया है। ऋषि दयानन्द के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य मात्र को अपनी आय का शतांश अवश्य दान करना चाहिए। किन्तु दान देते हुवे सावधान रहना चाहिये कि जिसे दान दे रहे हो वह इन तीन दुर्गणों वाला न हो- **'एक अतपा: अर्थात् ब्रह्मचर्य सत्य भाषणादि तप रहित, दूसरा अनधीयान: अर्थात् बिना पढा हुवा और तीसरा प्रतिग्रहरुचि: अर्थात् अत्यन्त धर्मार्थ दूसरों से दान लेने वाला।'** क्योंकि जो धर्म से प्राप्त हुवे धन का उक्त तीनों को देना है, वह दाता का नाश इसी जन्म और लेने वाले का नाश परजन्म में करता है। अत: दान भी विवके पूर्वक ही करना चाहिए। ठीक-ठीक किया गया दान जहाँ यज्ञ संज्ञक होकर पुण्यदायी होता है, वहीं अस्थान वा अपात्र को दिया गया दान विनाश कारक होता है। सामान्यतया लोग समझते हैं कि यदि कोई भी माँगने आ जावे तो देने में संकोच नहीं करना चाहिए, यह धारणा मुस्लिम काल में और सुदृढ हुई या की गई, जैसा कि कहा गया -

रहिमन वे नर मर चुके, जे कछु माँगन जाहिं।
उनसे पहले वे मुए, जिन मुख निकसत नाहीं।।

उपरोक्त बात कहने का अभिप्राय संभवतया भिखारी के सम्बन्ध में ही 'रहीम' का रहा होगा, वस्तुत: अपने यहाँ भिक्षा का अधिकार भी सभी को नहीं था, ब्रह्मचारी और संन्यासी को छोड अन्य का भिक्षाचरण उचित नहीं माना जाता था। वस्तुत: ब्राह्मण के लिये भी प्रतिग्रह अर्थात् अत्यन्त धर्मार्थ दान ग्रहण करना नीच कर्म कहा गया है। यदि समाज का सबसे बुद्धिमान व बुद्धिजीवी वर्ग भी किसी कारणवश भिक्षा पर आधारित रहने लगे (इस वर्ग का दक्षिणा पर रहना उत्तम है) तो समाज को यथाशीघ्र इसकी चिकित्सा करनी चाहिए। दान लेने व देनेवाले दोनों को ऋषि दयानंद का यह वाक्य अवश्य ध्यान रखना चाहिए- **'वेदविद्या, वेदोक्त धर्म का प्रचार, अनाथपालन और वेदोक्त धर्मोपदेश की प्रवृत्ति के लिये जितना चाहे धन प्रदान करें।'** दान के यही सर्वोत्तम स्थान हैं।

तीसरा है 'संगतिकरण' और मेरी दृष्टि में यह यज्ञ का सबसे महत्वपूर्ण एवं विस्तृत रूप है। भौतिक अर्थ में यदि देखें तो जो भी नये या पुराने अविष्कार देखने में आते हैं वे सब संगतिकरण के ही उदाहरण हैं। अर्थात् सारे उपकारक, रक्षक और सुख के साधन संगति का ही चमत्कार हैं। सम्यक् गति ही संगति है। संगति मेल या मिलाने की क्रिया को कहते हैं लेकिन संसार में कोई पदार्थ बिना गति के नहीं रह सकता, जब वह गति सम्यक् अर्थात ठीक इस योग्य हो जावे कि उत्तम निर्माण हो सके इसी का नाम संगति है। गति के तीन अर्थ प्रसिद्ध हैं ज्ञान, गमन और प्राप्ति, इन तीनों के ठीक वा सम होने पर संगति होना संभव है। यथा किसी एक वा अनेक विषयों पर जिनका ज्ञान एक वा ठीक-ठीक है, चाहे वे एक दूसरे से परिचित भी न हों पुन: उन विषयों की चर्चा होने पर इन सबका मत एक ही होगा अर्थात् इनकी संगति हो जायेगी, यह संगति किसी एक विचार की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। कोई भी सामाजिक या राजनैतिक परिवर्तन तभी होता है जब बहुत सारे लोगों का मत किसी विषय पर एक हो जावे। इसे परिवार के परिपेक्ष्य में भी समझा जा सकता है, जहाँ परिवार के लोग एक-दूसरे के स्वभाव, योग्यता, सामर्थ्य और सहने की क्षमता को जानते हों व व्यवहार भी ज्ञान के अनुसार करते हों तो परिवार दीर्घकाल तक संगति में बना रहेगा। जैसा अपने लिए चाहते हो वैसा दूसरों के लिये करो, इत्यादि विचार इस सम्यक् ज्ञान वा समझ को विकसित करने के लिए ही हैं। यज्ञवत् मतैक्य होना पुण्य दायी है और पुण्य का परिणाम भी है। यहाँ एक प्रश्न उठता है, क्या किसी विषय पर भिन्न मत होना वा एक ही विषय को अलग प्रकार से समझना पाप या अपराध कहा जावेगा? भिन्नमत होना निश्चित ही उपद्रवों का कारण है लेकिन इसे तब तक अपराध नहीं कहा जा सकता जब तक ये लोग परस्पर विचार विमर्श करके एक मत होने को तत्पर हों। परन्तु जब सत्य जानकर एक मत होने के स्थान पर अपने-अपने असत्य को सत्य सिद्ध करने की होड आरम्भ जाती है तब यह पाप बन जाता है। अत: सम्यक् ज्ञान करके एकमत, संगठित रहना यज्ञ है।

इस गति का दूसरा अर्थ है 'गमन' अर्थात् जाना, चलना। जिनका गमन, चलना वा जाना सम्यक् है अथवा एक दिशा में है, उन सबकी संगति होना संभव है। भगवान वेद ने भी संगठन के निमित्त यही आदेश दिया है- **संगच्छध्वं संवदध्वं संवोमनांसि जानताम्।** इसमें संवोमनांसि जानताम् जहाँ एक से ज्ञान का उपदेश कर रहा है वहीं संगच्छध्वम् सम्यक् गति को इंगित कर रहा है। जब अनेकों लोग एक दिशा में, एक साथ एक गति से गमन करते हैं इसी को लोक में काफिला कहते हैं यह काफिला बिना विचार का समूह है किन्तु फिर भी यह एक संगति है, यदि इसमें एक

शेष अगले पृष्ठ पर ....

पिछले पृष्ठ का शेष .... सम्यक् विचार भी जुड जावे तो यह एक दृढ संगठन का रूप ले लेता है। समाज के साथ भी संगति तभी बनती है जब हम उसी की गति से चल सकें। परिवार में भी गति बनाये रखना अत्यन्त आवश्यक है। जिस संगठन में गति हीनता या स्थैर्य आ जाता है उसमें विघटन होते देर नहीं लगती। अतः संगठन में गति अर्थात् क्रियाशीलता का होना आवश्यक है और वह भी एक दिशा में।

गति का तीसरा अर्थ है 'प्राप्ति' अर्थात् जो वस्तु हम प्राप्त करना चाहते हैं वा हमारा जो लक्ष्य है। जिनका लक्ष्य सम्यक्, ठीक-ठीक अर्थात् एक है उनकी संगति होना सम्भव है। सौभाग्य से यदि एक लक्ष्य के साथ एक गति और एक विचार भी सम्लित हों तो यह एक आदर्श संगठन होगा, ऐसे संगठन दीर्घकाल तक चला करते हैं। जो ऐसा संगठन बनाते हैं वे सौभाग्यशाली हैं क्योंकि वे एक सफल यज्ञ कर रहे हैं। यज्ञ का परिणाम पुण्य तो है ही। उपरोक्त विश्लेषण से यह समझा जा सकता है कि यज्ञ अग्निहोत्र मात्र ही नहीं अपितु अत्यन्त व्यापक है।

यह यज्ञ भंग कब होता है इस पर चर्चा करते हैं, पहले देवपूजा- इस सम्बन्ध में नीति के एक श्लोक से ही कहना पर्याप्त होगा-

अपूज्याः यत्र पूज्यन्ते पूज्यानां अवमानना।
त्रीणी तत्र प्रर्वतन्ते दुर्भिक्षं मरणं भयम्॥

जब देवों के स्थान पर दानवों, असुरों, राक्षसों, दस्युवों वा अपूज्य लोगों की पूजा होने लगती है तब देवपूजा रूपी यह यज्ञ भंग हो जाता है। दान के सम्बन्ध में हम पहले ही पर्याप्त चर्चा कर चुके हैं, संगतिकरण पर एक दृष्टि डाल लेते हैं। इस पर ज्ञान गमन और प्राप्ति तीनों ही परिपेक्ष्य में देखेंगे। ज्ञान का सम्यकपन समाप्त होने पर उसके कारण से जो संगति थी वह भी समाप्त हो जाती है, ज्ञान यदि न्यूनाधिक हो तो संगति बनी रहती है, परस्पर साथ-साथ रहने से ज्ञान बराबर हो जाता है किन्तु यदि ज्ञान विपरीत हो, मिथ्या हो और उसी को सत्य मानने लगे हों, साथ ही उस मिथ्या को सत्य सिद्ध करने का पूरा प्रयास भी करें, तब संगति बने रहना सम्भव नहीं रहती है और एक नया सम्प्रदाय बन जाता है। गमन की दिशा बदलते ही संगति टूट जाती है, संगति का बडा आधार गमन की दिशा पर भी निर्भर करता है। गमन की दिशा एक रहते ही किसी एक की गति न्यून हो जावे तब उसका संगति में बने रहना कठिन होता है, किन्तु संगति उसे अपने साथ ले कर चल सकती है, थोडा अपनी गति कम करके उसकी गति को बढा कर उसे अपने साथ प्रायः बनाये रखती है। यदि कोई संगति से तेज चलकर आगे जाने का प्रयास करता है और संगति समझती है कि इस प्रकार से आगे जाना उसके लिए ठीक नहीं तब संगति उसे रोककर, उसकी गति को कम करके अथवा अपनी गति को बढाकर उसे अपने साथ रखती है। किन्तु यह तभी तक सम्भव है जब तक वह व्यक्ति संगति को छोडकर अकेले जाने का निर्णय न कर ले। सबसे बडी समस्या तो तब आती है जब उस व्यक्ति के मस्तिष्क में कोई अवान्तर लक्ष्य उत्पन्न हो जाता है, यह अवान्तर लक्ष्य ठीक अपवाद नियम की भाँति मुख्य लक्ष्य पर भारी पडता है अब मुख्य गौण हो जाता है और गौण मुख्य। ऐसी परिस्थिति में उस व्यक्ति का संगति के साथ रहना अत्यन्त कठिन या कहिये पायः असम्भव हो जाता है। अब तक उस व्यक्ति के अत्यन्त महत्वपूर्ण होने पर भी संगति को उसे अपने से अलग करना होता है क्योंकि व्यक्ति अपना मार्ग बदल सकता है संगति नहीं बदल सकती। जैसे सेना मे काम करने वाला सेना का कोई कमाण्डर यदि व्यापार का मन बना ले तो सेना के योग्य नहीं रह जाता है, हालाँकि वह शरीर से अभी स्वस्थ है फिर भी सेना उसे अपने साथ नहीं रख सकती। जबकि सेना के कई सैनिकों की भावना उसके साथ जुडी है, यदि ये सैनिक यह दबाव सेना पर बनाना चाहें कि हर स्थिति में उसे सेना में रखना होगा। तब उन सैनिकों का यह व्यवहार विद्रोह ही माना जावेगा जबकि उन सैनिकों में से कोई भी राष्ट्र का अथवा सेना का कुछ बुरा नहीं करना चाहता है। वे तो जिसके साथ भवना जुडी हैं उसके साथ खडे मात्र हैं और कई तो इसे न्याय की लडाई मानते हैं। उन सैनिकों को समझना होगा कि अवान्तर लक्ष्य रखना सेना रूपी संगठन के लिए उचित नहीं है। इसी से सैनिक अपनी भावनाओं पर नियन्त्रण रखते हैं।

अन्त में स्पष्ट कहना चाहूँगा कि संगठन भी यज्ञ ही है आर्य याज्ञिक होते हैं। यज्ञ को भंग करना आर्यों का नहीं अनार्यों, दस्युओं या राक्षसों का काम है। अतः सभी आर्यों को चाहिये कि संगठन रूपी यज्ञ वा यज्ञ रूपी संगठन के महत्व को समझते हुवे सर्वतोप्रकारेण इसमें जुट जाना चाहिए।

भाद्रपद

4 अगस्त- 2 सितम्बर 2020 — ऋतु- शरद

सोमवार	मंगलवार	बुधवार	गुरुवार	शुक्रवार	शनिवार	रविवार
	श्रवण कृष्ण प्रतिपदा 4 अगस्त	धनिष्ठा कृष्ण द्वितीया 5 अगस्त	शतभिषा कृष्ण तृतीया 6 अगस्त	पूर्वाभाद्रपदा कृष्ण चतुर्थी 7 अगस्त	उत्तराभाद्रपदा कृष्ण पंचमी 8 अगस्त	रेवती कृष्ण षष्ठी 9 अगस्त
अश्विनी कृष्ण षष्ठी 10 अगस्त	भरणी कृष्ण सप्तमी 11 अगस्त	कृत्तिका कृष्ण अष्टमी 12 अगस्त	रोहिणी कृष्ण नवमी 13 अगस्त	मृगशिरा कृष्ण दशमी 14 अगस्त	मृगशिरा कृष्ण एकादशी 15 अगस्त	आर्द्रा कृष्ण द्वादशी 16 अगस्त
पुनर्वसु/पुष्य कृष्ण त्रयोदशी 17 अगस्त	आश्लेषा कृष्ण चतुर्दशी 18 अगस्त	मघा कृष्ण अमावस्या/ प्रतिपदा 19 अगस्त	पू॰ फाल्गुनी शुक्ल द्वितीया 20 अगस्त	उ॰ फाल्गुनी शुक्ल तृतीया 21 अगस्त	हस्त शुक्ल चतुर्थी 22 अगस्त	चित्रा शुक्ल पंचमी 23 अगस्त
स्वाति शुक्ल षष्ठी 24 अगस्त	विशाखा शुक्ल सप्तमी 25 अगस्त	अनुराधा शुक्ल अष्टमी 26 अगस्त	ज्येष्ठा शुक्ल नवमी 27 अगस्त	मूल शुक्ल दशमी 28 अगस्त	पूर्वाषाढ़ा शुक्ल एकादशी 29 अगस्त	उत्तराषाढ़ा शुक्ल द्वादशी 30 अगस्त
श्रवण शुक्ल त्रयोदशी 31 अगस्त	धनिष्ठा शुक्ल चतुर्दशी 1 सितम्बर	शतभिषा शुक्ल पूर्णिमा 2 सितम्बर			श्री कृष्णचन्द्र जयन्ती भाद्रपद कृष्ण अष्टमी 12 अगस्त	स्वतंत्रता दिवस 15 अगस्त

आश्विन

3 सितम्बर- 1 अक्टूबर 2020 — ऋतु- शरद

सोमवार	मंगलवार	बुधवार	गुरुवार	शुक्रवार	शनिवार	रविवार
			पूर्वाभाद्रपदा कृष्ण प्रतिपदा 3 सितम्बर	उत्तराभाद्रपदा कृष्ण द्वितीया 4 सितम्बर	रेवती कृष्ण तृतीया 5 सितम्बर	अश्विनी कृष्ण चतुर्थी 6 सितम्बर
भरणी कृष्ण पंचमी 7 सितम्बर	भरणी कृष्ण षष्ठी 8 सितम्बर	कृत्तिका कृष्ण सप्तमी 9 सितम्बर	रोहिणी कृष्ण अष्टमी 10 सितम्बर	मृगशिरा कृष्ण नवमी 11 सितम्बर	आर्द्रा कृष्ण दशमी 12 सितम्बर	पुनर्वसु कृष्ण एकादशी 13 सितम्बर
पुष्य कृष्ण द्वादशी 14 सितम्बर	आश्लेषा कृष्ण त्रयोदशी 15 सितम्बर	मघा कृष्ण चतुर्दशी 16 सितम्बर	पू॰ फाल्गुनी कृष्ण अमावस्या 17 सितम्बर	उ॰ फाल्गुनी/हस्त शुक्ल प्रतिपदा 18 सितम्बर	चित्रा शुक्ल द्वितीया/ तृतीया 19 सितम्बर	स्वाति शुक्ल चतुर्थी 20 सितम्बर
विशाखा शुक्ल पंचमी 21 सितम्बर	अनुराधा शुक्ल षष्ठी 22 सितम्बर	ज्येष्ठा शुक्ल सप्तमी 23 सितम्बर	मूल शुक्ल अष्टमी 24 सितम्बर	पूर्वाषाढ़ा शुक्ल नवमी 25 सितम्बर	उत्तराषाढ़ा शुक्ल दशमी 26 सितम्बर	श्रवण शुक्ल एकादशी 27 सितम्बर
धनिष्ठा शुक्ल द्वादशी 28 सितम्बर	शतभिषा शुक्ल त्रयोदशी 29 सितम्बर	पूर्वाभाद्रपदा शुक्ल चतुर्दशी 30 सितम्बर	उत्तराभाद्रपदा शुक्ल पूर्णिमा 1 अक्टूबर			

गौकरुणानिधिः - गौ आदि पशुओं की रक्षा के लिये ऋषि का संदेश

ऋषि दयानन्द ने वेद के सिद्धान्तों को जनसामान्य तक पहुँचाने के लिए अन्य कार्यों के साथ-साथ एक पूर्णकालिक लेखक के रूप में भी अनेकों ग्रन्थों की रचना की है। उन्होंने विशुद्ध व्याकरण के ग्रन्थों से लेकर वेदभाष्य तक व सत्यार्थ प्रकाश जैसे कालजयी ग्रन्थ से लेकर गायादि पशुओं की रक्षा व उपयोगिता के लिए गौकरुणानिधि जैसी सामान्य जन के लिए भी अत्यन्त उपयोगी पुस्तकों की रचना की है। ऋषि ने इस पुस्तक में गायादि पशुओं के पूरे अर्थशास्त्र को, उनकी उपयोगिता को दर्शाया है तथा समीक्षा भाग में मांसाहार व मद्यपान आदि की निस्सारता व हानियों को दर्शया हैं। वहीं दूसरी ओर नियमादि देकर कृषि तथा पशुओं की उन्नति का मार्ग प्रदर्शित किया है।

यहाँ प्रस्तुत है गौकरुणानिधि पुस्तक, आईये इसका स्वाध्याय करते हैं। ध्यान से पढ़ें तथा विचार करें कि यदि हम ऋषि के बताए अनुसार गायादि पशुओं की रक्षा करते हैं, उनका उपयोग लेते हैं तो न केवल पूरे राष्ट्र को अपितु एक एक व्यक्ति व एक एक परिवार स्मृद्धि को प्राप्त हो सकता है। यही मार्ग हमारी आर्थिक उन्नति का मूल है तथा इसको अपनाकर हम पाप से भी बच सकते हैं।

गतांक से आगे ...

इसीलिए यजुर्वेद के प्रथम ही मन्त्र में परमात्मा की आज्ञा है कि-'अघ्न्याः यजमानस्य पशून् पाहि' हे पुरुष! तू इन पशुओं को कभी मत मार। और यजमान, अर्थात् सबको सुख देनेवाले जनो के सम्बन्धी पशुओं की रक्षा कर, जिनसे तेरी भी पूरी रक्षा होवे। और इसीलिए ब्रह्मा से लेकर आज पर्यन्त आर्य लोग पशुओं की हिंसा में पाप और अधर्म समझते थे, और अब भी समझते हैं।

और इनकी रक्षा में अन्न भी महँगा नहीं होता। क्योंकि दूध आदि के अधिक होने से दरिद्र को भी खान-पान में मिलने पर न्यून ही अन्न खाया जाता है। और अन्न के न्यून खाने से मल भी कम होता है। मल के न्यून होने से दुर्गन्ध भी न्यून होता है। दुर्गन्ध के स्वल्प होने से वायु और वृष्टिजल की शुद्धि भी विशेष होती है, उससे रोगों की न्यूनता होने से सबको सुख बढ़ता है।

इससे यह ठीक है कि गो आदि पशुओं का नाश होने से राजा और प्रजा का भी नाश हो जाता है। क्योंकि जब पशु न्यून होते हैं, तब दूध आदि पदार्थ और खेती आदि कर्यों की भी घटती होती है। देखो, इसी से जितने मूल्य से जितना दूध और घी आदि पदार्थ तथा बैल आदि पशु ७०० सात सौ वर्ष पूर्व मिलते थे, उतना दूध, घी और बैल आदि पशु इस समय दशगुणे मूल्य से भी नहीं मिल सकते। क्योंकि ७००सात सौ वर्ष के पीछे इस देश में गवादि पशुओं को मारनेवाले मांसाहारी विदेशी मनुष्य बहुत आ बसे हैं। वे उन सर्वोपकारी पशुओं के हाड़-मांस तक भी नहीं छोड़ते, तो 'नष्टे मूले नैव फत्रं न पुष्पम्', [वृद्ध चाणक्य-नीति १०/१३] जब कारण का नाश कर दे, तो कार्य नष्ट क्यों न हो जावे?

हे मांसाहारियो! तुम लोगों को कुछ काल के पश्चात् जब पशु न मिलेंगे, तब मनुष्यों का मांस भी छोड़ोगे वा नहीं? हे परमेश्वर! तू क्यों इन पशुओं पर, जो कि विना अपराध मारे जाते हैं, दया नहीं करता? क्या उन पर तेरी प्रीति नहीं है ? क्या इनके लिए तेरी न्यायसभा बन्द हो गई है? क्यों उनकी पीड़ा छुड़ाने पर ध्यान नहीं देता, और उनकी पुकार नहीं सुनता। क्यों इन मांसाहारियों के आत्माओं में दया का प्रकाश कर निष्ठुरता, कठोरता, स्वार्थपन और मूर्खता आदि दोषों को दूर नहीं करता? जिससे ये इन बुरे कामों से बचें।

अथ समीक्षायां हिंसक-रक्षक-संवादः

हिंसक-ईश्वर ने सब पशु आदि सृष्टि मनुष्य के लिए रची है, और मनुष्य अपनी भक्ति के लिए। इसलिए मांस खाने में दोष नहीं हो सकता ।

रक्षक-भाई! सुनो। तुम्हारे शरीर को जिस ईश्वर ने बनाया है, क्या उसी ने पशु आदि के शरीर नहीं बनाये हैं? जो तुम कहो कि पशु आदि हमारे खाने के लिए बनाये हैं, तो हम कह सकते हैं कि हिंसक पशुओं के लिए तुमको उसने रचा है। क्योंकि जैसे तुम्हारा चित्त उनके मांस पर चलता है, वैसे ही सिंह, गृध्र आदि का चित्त भी तुम्हारा मांस खाने पर चलता है। तो उनके लिए तुम क्यों नहीं?

हिंसक-देखो, ईश्वर ने मनुष्यों के दाँत पैने, मांसाहारी पशुओं के समान बनाये हैं। इससे हम जानते हैं, कि मनुष्यों का मांस खाना उचित है।

रक्षक-जिन व्याघ्रादि पशुओं के दाँत के दृष्टान्त से तुम अपना पक्ष सिद्ध करना चाहते हो, क्या तुम भी उनके तुल्य ही हो? देखो, तुम्हारी मनुष्य जाति, उनको पशु जाति। तुम्हारे दो पग और उनके चार। तुम विद्या पढ़कर सत्यासत्य का विवेक कर सकते हो, वे नहीं। और यह तुम्हारा दृष्टान्त भी युक्त नहीं। क्योंकि जो दाँत का दृष्टान्त लेते हो। तो बन्दर के दाँतों का दृष्टान्त क्यों नहीं लेते? देखो ! बन्दरों के दाँत सिंह और बिल्ली के समान हैं, और वे मांस नहीं खाते। मनुष्य और बन्दर की आकृति भी बहुत-सी मिलती है। जैसे मनुष्यों के हाथ, पग और नख आदि होते हैं, वैसे ही बन्दरों के भी हैं। इसलिये परमेश्वर ने मनुष्यों को [बन्दर के] दृष्टान्त से उपदेश किया है कि जैसे बन्दर मांस कभी नहीं खाते, और फल आदि खाकर निर्वाह करते हैं, वैसे तुम भी किया करो। जैसा बन्दरों का दृष्टान्त सांगोपांग मनुष्यों के साथ घटता है, वैसा अन्य किसी का नहीं। इसलिए मनुष्यों को अति उचित है कि मांस खाना सर्वथा छोड़ देवें।

क्रमश ....

संध्या काल

भाद्रपद-मास, शरद-ऋतु, कलि-5121, वि. 2077	अश्विन-मास, शरद-ऋतु, कलि-5121, वि. 2077
(04 अगस्त 2020 से 2 सितम्बर 2020)	(03 सितम्बर 2020 से 1 अक्टूबर 2020)
प्रातः कालः 5 बजकर 45 मिनट से (5.45 A.M.)	प्रातः कालः 6 बजकर 00 मिनट से (6.00 A.M.)
सांय कालः 6 बजकर 45 मिनट से (6.45 P.M.)	सांय कालः 6 बजकर 30 मिनट से (6.30 P.M.)